



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 5.2  
IJAR 2018; 4(5): 193-196  
www.allresearchjournal.com  
Received: 23-03-2018  
Accepted: 25-04-2018

डॉ. अंजना रानी  
एसोसिएट प्रोफेसर,  
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु  
राजकीय महाविद्यालय,  
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

## मानववादी अवधारणा के संदर्भ में भारतीय चिंतन

डॉ. अंजना रानी

सारांश

आधुनिक युग में मानववादी अवधारणा ने मानव को केंद्र में रखकर इहलोक को ज्यादा न्याययुक्त, सुंदर और सार्थक बनाने का प्रयास किया। यद्यपि इस अवधारणा को पश्चिम की देन माना जाता है लेकिन सच्चाई यह है कि ऋग्वेद के बहुत सारे मंत्र मानव की छोटी-छोटी कामनाओं से जुड़े हुए हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में कर्मकांड के नाम पर जिन यज्ञों का प्रचलन था, वे भी मानव की इच्छाओं की तृप्ति के लिए किए जाते थे-चाहे वे स्वर्ग की कामना से हो या पुत्र की कामना से। पश्चिमी जगत में मानववाद पाप और अधःपतन की ईसाई विचारधारा के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप अस्तित्व में आया। बुद्धि पर आधारित मानववाद में बाद में संवेदनाओं को भी जोड़ने का प्रयास किया गया। इससे मानवतावाद अस्तित्व में आया। मानववाद जहां मानव को ही साध्य मानता था वहां मानवतावाद ने दृष्टि को विस्तार दिया। मध्यकालीन भारत में साधु-संतों ने ऊंच-नीच, जात-पात के विरुद्ध समाज को जगाया। ऐसे सामाजिक जागरण के वातावरण में भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक मूल्यों ने इंसान में ही भगवान को देखने की दृष्टि उत्पन्न की।

कूटशब्द: मानववाद, मानवतावाद, बुद्धिवाद, अनुभववाद

प्रस्तावना

सभी जीवों में मानव सर्वश्रेष्ठ है। इसका मूल कारण यह है कि मन की जैसी प्रबलतम और सशक्ततम अभिव्यक्ति मानव में दृष्टिगोचर होती है, वैसी अन्य जीवों में नहीं। मानव यदि ऊंचा उठे तो देव भी फीके पड़ जाते हैं और मानव यदि नीचे गिरे तो जानवर भी पीछे छूट जाते हैं। सत्य, प्रेम, अहिंसा के लिए अपने प्राणों की बलि देने वाले गांधी एक मानव ही हैं और करोड़ों लोगों की हत्या करवाने वाला हिटलर भी एक मानव ही है। संस्कृत के श्लोक में कहा गया है-

"मन एवं मनुष्यानाम् कारणं बंधमोक्षयोः।"

Corresponding Author:  
डॉ. अंजना रानी  
एसोसिएट प्रोफेसर,  
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु  
राजकीय महाविद्यालय,  
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

अर्थात् मन मनुष्य के बंधन का भी कारण है और मुक्ति का भी। इसी मन के कारण कुछ लोगों ने इस जीवन को स्वर्ग बना लिया और कुछ लोगों ने नर्क बना दिया।

सभी जीवों को अपना प्राण सबसे प्रिय होता है। किंतु मानव एक ऐसा प्राणी है जो कुछ ऐसे मूल्य बनाता है जिनके लिए अपने प्राणों को कुर्बान कर देता है। अतः सत्य के लिए हरिश्चंद्र, प्रेम के लिए ईसा मसीह, अहिंसा के लिए महावीर, करुणा के लिए महात्मा बुद्ध जैसे मानव अपनी-अपनी मूल्य-प्रतिबद्धता के कारण महामानव हो गए।

प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार तथा बुद्धिजीवी अल्बेयर कामू ने मानववादी जीवन और दर्शन का सुंदर निरूपण करते हुए कहा है कि- "इस बेहूदी दुनिया का कोई अर्थ नहीं है, किंतु इसमें मनुष्य एक ऐसा है जिसका बहुत बड़ा अर्थ है। मनुष्य एक ऐसी चेतना है जो सारे तत्वों को अर्थ देती है। यही चेतना ही सारे सत्त्यों की गवाही है।"<sup>1</sup>

अग्नि-पुराण में कहा गया है कि मानव जीवन दुर्लभ है और मुक्ति का द्वार है-

"जीवा मानुष्यती मन्ये जन्मानाम युतैरपि तदीदृक् प्राप्त मुक्तिद्वार विचेतसः।।"<sup>2</sup>

महाभारतकार ने भी यही घोषणा की-"नहि मानुषात् श्रेष्ठतरो हि किंचित्" अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं।

"मानववाद" शब्द मनुष्य को सर्वोच्च मानने की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करता है। मानव का मानव मात्र होना ही अपने आप में एक विशेष अर्थ रखता है और जब विश्व के धर्म एवं दर्शनों से जोड़ दिया जाता है तो उसका अर्थ एक विशाल रूप ग्रहण कर लेता है। उसका 'स्व' व्यष्टि से समष्टि में विलीन हो जाता है और मानववादी स्वरूप को अनेक आदर्शों में विभक्त कर देता है। उसके ये आदर्श नैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं भौतिक जगत से संबंधित हो जाते हैं, जिनके आधार पर युगानुसार मानववादी स्वरूप बदलता रहता है।

जीवन दर्शन का लक्ष्य जीवन संबंधी मौलिक प्रश्नों की विवेचना है। हम जीवन को विश्व से अलग करके नहीं देख सकते। स्वतंत्रता और परतंत्रता जैसे शब्द जीवन

की वास्तविकता को उजागर नहीं करते। परस्परतंत्रता जीवन की वास्तविकता है। इस जीवन पर विवेचन मानव संबंधी मूल विश्वासों के प्रकाश में ही हो सकता है। वेदों के युग से ही मानव सारी चिंतना का केंद्र बिंदु रहा है। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि भारत में दर्शन और धर्म कभी भी पूरी तरह अलग नहीं हुए, और धर्म अनिवार्य रूप से मानव केंद्रित होता है। नीतिशास्त्रकार ने भी यही कहा है कि धर्म से हीन व्यक्ति पशु के समान होता है-

आहारनिद्राभयमैथुनं च समानेतत् पशुभिर्नराणाम् धर्मो हि तेषामधिकोविशेषो, धर्मेणहीनाः पशुभिः समाना।<sup>3</sup>

पश्चिम में दर्शन, विश्व को बुद्धि और अनुभव के माध्यम से समझने की मांग के फलस्वरूप प्रारंभ हुआ था। अतः पश्चिम के दार्शनिक विश्व के अंतिम तत्व की खोज में संलग्न रहे। सुकरात ने मानव को दर्शन का केंद्र बिंदु बनाया। अनेक इतिहासकार प्रोटागोरस तथा सुकरात को मानववाद का मूल प्रणेता मानते हैं।

यूरोप में 16वीं और 17वीं सदी में व्यक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास हुआ उसके लिए "मानववादी" विचारधारा पद का प्रयोग पहली बार किया गया। मानववाद के विभिन्न अर्थ प्रचलित हुए लेकिन प्रमुख रूप से प्रचलित अर्थ रहे-मध्ययुगीन मनोवृत्ति का विरोध, इंद्रियजन्य सुखों के महत्व की घोषणा, इहलोकवाद, बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद। मानववाद का विचार वस्तुतः पाप और अधःपतन की ईसाई विचारधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया से निःसृत हुआ। "यह धार्मिक कठोरतावाद के विरुद्ध व्यक्ति के स्वातंत्र्य की उद्घोषणा करता है जो मानव के सुख और भौतिक इच्छाओं के परितोष तथा अधिकारिक तथ्य की भावना पर आधारित है।"<sup>4</sup>

मध्यवर्गीय (बुर्जुआ)मानववाद अपने शिरोबिंदु पर 18वीं शताब्दी के प्रकाश में आया, जब मानव अधिकारों के प्राकृतिक सार तत्व को विकसित करने के लिए

स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व का नारा लगाया गया।

मानववाद की मूल प्रवृत्ति को प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्रोटागोरस के इस वक्तव्य द्वारा व्यक्त किया जा सकता है कि "मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदंड है।"<sup>5</sup> मानव को साध्य मानने, इहलोक को ही सब कुछ मानने के कारण और धर्म को खारिज करने के कारण मानववाद को एक दार्शनिक दृष्टिकोण मात्र माना गया, दर्शन नहीं।

परलोक की सत्ता में विश्वास रखने वाले धार्मिक प्रवृत्ति के लोग और मानव के साथ सभी जीवों के सह-अस्तित्व की भावना वाले लोगों ने मानवतावाद का विकास किया। मानववाद जहां शुद्ध रूप से तर्क बुद्धि और बुद्धि वैशिष्ट्य का हामी है, वहां मानवतावाद व्यक्ति की संवेदनशील प्रवृत्ति को ही व्यक्ति वैशिष्ट्य की प्रेरणा के रूप में मानता है। मानववाद और मानवतावाद के अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामधारी शर्मा ने कहा है-"मानववाद का केंद्र बिंदु मनुष्य है और मानवतावाद का सर्वभूत। मानववाद प्रमुख रूप से बुद्धि पर आश्रित है और मानवतावाद भावना पर। मानववाद यथार्थान्मुख दर्शन है, व्यावहारिक अधिक है और मानवतावाद आदर्शवादी दर्शन है। मानववाद का संबंध विज्ञान से हैं और मानवतावाद का संबंध नैतिकता से हैं। परंतु दोनों में सबसे बड़ा साम्य यह है कि दोनों ही मनुष्यता की सब प्रकार के बंधनों से मुक्ति चाहते हैं और उसकी सर्वतोमुखी प्रगति का संदेश सुनाते हैं।"<sup>6</sup>

भारतीय जीवन और चिंतन में वैदिक काल से ही व्यक्ति के लौकिक और आध्यात्मिक दोनों स्वरूपों को प्रतिष्ठित एवं विकसित करने का प्रयास हुआ है। प्रारंभिक भारतीय चिंतन न तो प्रत्ययवादी था और न अंतर्दर्शी वरन् आशावादी और जीवन की महत्ता को स्वीकार करने वाला दर्शन था। आदिकालीन आर्यों के समस्त कर्मकांडों और चिंतना का क्षेत्र मानव के प्रत्यक्ष जीवन तक ही सीमित था। ऋग्वेद में ऐसे सूक्त मिलते हैं जो देवताओं के अस्तित्व के बारे में संदेह से परिपूर्ण हैं

"लोग कहते हैं इंद्र नहीं है, किसने उसे देखा है?"<sup>7</sup>

इंद्र कौन है? इंद्र ही नहीं है तो हम किसकी पूजा करें?<sup>8</sup> अतः कुन्हन राजा लिखते हैं -"यहां हम पदार्थ से अलग आत्मा का कोई चिन्ह नहीं देखते और जो कुछ हम देखते हैं, वह केवल अनंत हैं जो इस अनुभवार्जित जगत में पदार्थ और क्रिया के रूप में विभाजित हो गया है। एक पूर्ण एकांतिक सत्ता के रूप में जीवन तत्त्व उस अनंत में स्थित था। यहां अनीश्वरवाद पूर्णतः स्पष्ट है और यहां सांख्य प्रणाली का अनीश्वरवाद है अर्थात् इसमें विश्व प्रक्रिया का कोई स्रष्टा नहीं है। विकास इसी अनंत के अंतर्भाग से हुआ है-इस अंतर्भाग से जिसके अंदर जीवन की शक्ति अथवा परिवर्तन और गतियुक्त इस संसार का विकास वर्तमान है।"<sup>9</sup>

भारतीय दर्शन सारतः अध्यात्मवाद पर आधारित हैं, परंतु हमारे इतिहास के विभिन्न युगों में भौतिकवाद ने भारतीय विचारधारा पर शक्तिशाली प्रभाव डाला है। जैसा कि डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है -"भौतिकवाद उतना ही पुराना है जितना स्वयं दर्शन।"<sup>10</sup>

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्ययवादी विचारधारा का कोई महत्व ही नहीं था बल्कि बहिष्कार उन्हीं तत्वों का था जो मनुष्य की महत्ता को कम करने वाले थे। सांख्य, वैशेषिक, न्याय, स्वभाववाद, वैभाषिक, यदृच्छावाद, सौत्रांतिक और लोकायत से प्रकट होता है कि भारतीय दार्शनिक प्रणाली में भौतिकता प्रधान प्रवृत्ति सशक्त थी।

वैदिक कर्मकांड मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन के कल्याण से संबंधित था, उसके संवेदनात्मक जीवन से नहीं। औपनिषदिक दार्शनिकों ने सोचा कि भौतिक तत्वों के अतिरिक्त भी कुछ और होना चाहिए ठीक वैसे ही जैसे शरीर के विविध भौतिक अंगों के अतिरिक्त भी कुछ और होता है। धीरे-धीरे अध्यात्मवादी चिंतन इतना प्रमुख हो गया कि "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या"<sup>11</sup> जैसे महावाक्य की उद्घोषणा हो गई। शंकराचार्य और उनके अद्वैत दर्शन के उदय के बाद से वेदांत में जगत का निषेध करने वाली प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। लेकिन इसके साथ अद्वैत वेदांत का खंडन करने वाले रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य,

वल्लभाचार्य तथा निंबार्काचार्य जैसे दार्शनिकों ने इस प्रवृत्ति का तीव्र विरोध किया। ये बाद के दार्शनिक वस्तुनिष्ठ प्रत्ययवादी थे और इनकी कुछ शिक्षाओं ने भारतीय चिंतन में पुनः मानववादी प्रवृत्तियों को अनुप्राणित किया।

इस प्रकार भारतीय अध्यात्मवाद, जो वेदांत कहलाता है, भले ही कितना भी एकांगी व अपर्याप्त क्यों न रहा हो, लेकिन उसने मानववादी परंपरा के विकास को चरम शिखर तक पहुंचाया है जो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"<sup>12</sup> और "ईशावास्यमिदं सर्वं"<sup>13</sup> के रूप में प्रकट हुआ।

मानववाद के क्षेत्र में धर्म का स्थान कितना महत्वपूर्ण है इसका दिग्दर्शन हम मध्यकाल के भक्ति आंदोलनों में देख सकते हैं। भक्तिकालीन-संत अन्याय और उत्पीड़न की विपदाओं के मुकाबले मनुष्यों के बीच आध्यात्मिक समानता और भ्रातृत्व का समर्थन करते रहे। मध्य युग के उत्तर काल में प्रगतिशील संतों और दार्शनिकों की शिक्षाओं ने न केवल तत्कालीन परिस्थितियों के विरोधी संघर्षों को उत्प्रेरित किया, बल्कि 19<sup>वीं</sup> शताब्दी के नए धार्मिक सुधार आंदोलन के लिए मूलाधार का निर्माण किया। मानव क्षमता के प्रति एक नई चेतना का उदय हुआ। उन्होंने तत्कालीन अन्यापूर्ण समाज को, जो जाति और जन्म से ऊंच-नीच, छुआ-छूत के भेदभाव पर आधारित था, कमजोर करना शुरू कर दिया था। उन्होंने व्यक्तिवाद, उदारतावाद, धर्मनिरपेक्ष तथा मानववादी शक्तियों को प्रोत्साहित किया। स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, मोहम्मद इकबाल, महात्मा गांधी इत्यादि इन आधुनिक मूल्यों के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि थे। इन सभी पर प्राचीन वेद, उपनिषद और दर्शनों का प्रभाव था, किंतु वे इसके अतिरिक्त जीवन के यथार्थ सत्य से मुंह नहीं मोड़ते थे। अपने दार्शनिक विचारों के सत्य को मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन में देखते थे। इन लोगों ने भारतीय दार्शनिक चिंतन को अमूर्तता के सिद्धांतों से नीचे उतारकर यथार्थ की आशावादी धरती पर लाने का प्रयास किया। ईश्वर का ऐसा रूप जो ब्रह्मांड से परे कोई अस्तित्व नहीं रखता था बल्कि वह सौंदर्य, सत्य और प्रेम की समष्टि था।

उन्होंने एक ऐसे मानववादी सिद्धांत को जन्म दिया जो प्रगतिशील था। भाग्यवाद के सिद्धांत से उद्भूत पुराने मूल्यों का स्थान अब सृजनात्मकता, मानव गरिमा और स्वतंत्रता के नए मूल्यों ने लेना शुरू किया।

राष्ट्र, धर्म, जाति, रंग आदि के भेदभाव से ऊपर उठने के लिए भारतीय संस्कृति के आत्मपरक दृष्टि को एक तरफ अपनाना जरूरी है तो दूसरी तरफ मानव में ही ईश्वर को देखने वाली प्रवृत्ति और व्यवहार भी जरूरी है। इसके लिए "अमृतस्य पुत्राः वयम्" का मंत्र देने वाली हमारी संस्कृति मानव को अपनी क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर मानववादी परंपरा को आदर्शोन्मुख बनाती है।

#### संदर्भ

1. देशकाल और सत्य का सर्वोपरि साक्ष्य: मानव चेतना और विवेक--विकल्प, मई 1967, पृ. 204.
2. अग्नि-पुराण, शुद्धि प्रतनामाध्यायः।
3. नीतिशतकम्- भर्तृहरि
4. डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी
5. प्रोटागोरस
6. रामधारी शर्मा -हिंदी की सैद्धांतिक समीक्षा, पृ. 244.
7. ऋग्वेद 2/125
8. ऋग्वेद 103 /3
9. डॉ. कुन्हन राजा- पोस्ट फिलॉसफर्स ऑफ द ऋग्वेद' पृष्ठ 230.
10. डॉ. राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 1 पृष्ठ 227
11. निरालम्बोपनिषद, ब्रह्मज्ञानावलीमाला
12. छांदोग्य उपनिषद 3/14/1, सामवेद
13. ईशावास्योपनिषद्-1